P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-10* January- 2020
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविताओं में हिन्दी नवजागरणकालीन परिस्थितियां

Hindi Renaissance Conditions in the Poems of Bharatendu Harishchandra

नविता चौधरी
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
देशबंधु महाविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय),
कालकाजी, नई दिल्ली, भारत

सारांश

Bhartendu and his erudite litterateurs tried to create a new society in the new genres of literature to awaken the Hindi society from the diverse consciousnesses of the Renaissance. Encouraged logic based thinking, so that science knowledge and development would get a new floor and sovereign and independent India would be able to regain the dignity of its golden past in the light of independence.

भारतेन्दु और उनके युगीन साहित्यकारों ने नवजागरण की विविध चेतनाओं से हिंदी समाज को जागृत करने के लिए साहित्य की नवीन विधाओं में एक नवीन समाज की रचना का प्रयास किया। तर्क आधारित सोच को प्रोत्साहित किया, जिससे विज्ञान का ज्ञान एवं विकास को एक नयी मंजिल मिले और संप्रभु एवं स्वतंत्र हिंदुस्तान आजादी की रौशनी में अपने स्वर्णिम अतीत की गरिमा को फिर से हासिल करने में समर्थवान बन सके।

मुख्य शब्द : भारतेंदु हरिश्चन्द्र, लोक–चेतना, लोक–भाषा, भारतीय नवजागरण, उपनिवेशवाद। Bharatendu Harishchandra, Public Consciousness, Folk Language, Indian Renaissance, Colonialism.

प्रस्तावना

भारतेंदु हरिश्चन्द्र का साहित्य व्यापक लोक–चेतना से संबद्ध है। भारतीय नवजागरण तथा आधुनिक भावबोध से लेकर भारतेंदु ने साहित्य तथा समाज में जिस नवीन दृष्टि एवं परंपरा की नींव रखी, उसका संबंध जातिगत एवं रूढ़िगस्त समाज में मानवीय संवेदना तथा लोकोन्मुखता से है। भारतेंदु की रचनाशीलता उपनिवेशवाद विरोधी तथा शोषित एवं उपेक्षित मानवीय जनता का पक्षधर है। उनकी साहित्य दृष्टि का प्रतिफलन आम मनुष्यों के दुख, दर्द, इच्छा, आकांक्षा तथा जनवादी प्रवृत्तियों के बीच से होता है। भारतेंदु ने अंग्रेजी, संस्कृत, अरबी–फारसी के बजाय लोक–भाषा में रचना की तथा लोक–संस्कृति के मुहावरों एंव लोकोक्तियों का प्रयोग बाखूबी किया। ''भारतेंदु युग का संपूर्ण साहित्य भारत की साधारण जनता के लिए था। साधारण जन में राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक चेतना जगाने के लिए उन तक अपनी बातों को पहुँचाना आवश्यक था और यह तभी संभव था जब अभिजात वर्ग का नहीं वरन् जनसाधारण की भाषा को साहित्य का माध्यम बनाया जाए। अतः भारतेंदु युग के लेखकों ने साधारण बोलचाल की भाषा में ही अपने साहित्य की रचना की और यही उनके साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति बनी।''[1]

साहित्य को अभिजात्य संस्कृति के वर्चस्व से निकाल कर लोकजीवन के बीच प्रतिष्ठित करने तथा लोक को केंद्रीय शक्ति स्रोत बताने का श्रेय भारतेंदु को जाता है। भारतेंदु की साहित्य दृष्टि अत्यंत ही परिपक्व एवं व्यापक थी। संक्रमण काल के इस दौर में परंपरा एवं आधुनिकता के बीच सामंजस्य स्थापित कर भारतेंदु अपने संतुलित रचना कौशल का परिचय देते हैं और साहित्य का विस्तार करते हैं। इनकी साहित्य दृष्टि ने तत्कालीन भारतीय समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति की समस्याओं को मुखरित किया। इनके विवेचन का केन्द्र बिन्दु खासकर हिन्दी–प्रदेश का समाज है।

नवजागरणकालीन समाज में कविता का अभिजात्य से विलगाव हुआ तथा ठुमरी, दादरा इत्यादि लोक–प्रचलित काव्य रूपों को साहित्य में प्रतिष्ठित किया जाने लगा। हिन्दी की उन्नति का संबंध भारतेंदु भारत–वर्ष की उन्नति से जोड़ते हैं और भारत–वर्ष ही नहीं हिन्दी की उन्नति भी उनके अनुसार जन–साधारण अथवा 'लोक' की उन्नति से संभव है। भारतेंदु की दृष्टि में 'लोक' की उन्नति के लिए जातीय संगीत एवं ग्राम गीतों का अत्यधिक महत्व हैं साधारण जनता के चित्त को प्रभावित करने के लिए सशक्त माध्यम हैं। भारतेंदु ग्राम–गीतों अथवा लोक–गीतों के परंपरागत महत्व को स्वीकार करने के साथ–साथ उसका विस्तार भी करते हैं। देश की उन्नति का संबंध ग्राम भाषा की उन्नति से जोड़ते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

19वीं सदी के उत्तरार्ध का हिंदी समाज सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक रूप से संक्रमण कालीन स्तिथियों से संघर्ष कर रहा था इन नयी जानकारियों के बीच गुलामी की पीड़ा एवं आधुनिकता के प्रकाश ने उसे अपनी अस्मिता को पहिचानने की ओर प्रेरित किया। मध्यकालीन संकीर्णताओं से यह समाज संघर्ष करके एक उदारवादी सोच एवं विचार को अपनाने की ओर बढ़ रहा था। साहित्य एवं कला के माध्यम से वह अपनी नवीन प्रस्थापनाओं को वह व्यक्त कर रहा था।

विषय विस्तार

भारतेंदु की सबसे अधिक कविताएँ भक्तिपरक हैं। वैष्णव भक्त होने के कारण वे भक्ति की कविताएँ लिख रहे थे। इनकी धार्मिक कविताओं में लोक–संस्कृति अथवा भारतीय समाज विशेषकर हिन्दी समाज में प्रचलित व्रत–त्यौहारों, रीति–रिवाजों धार्मिक आख्यान का वर्णन है। उदाहरण के लिए, 'भक्तिसर्वस्व', 'कार्तिक स्नान', 'वैशाख–महात्म्य', 'होली', 'प्रातःस्मरण मंगल पाठ', 'प्रबोधिनी', 'प्रातः स्मरण स्तोत्रे' आदि काव्य रचनाओं को देखा जा सकता है। कविताओं की शैली अधिकांशतः लोकगीतों पर आधारित है। 'कार्तिक–स्नान' कविता में कार्तिक मास के त्योहारों एवं रिवाजों का वर्णन है। इसमें कार्तिक स्नान के महत्व को बताते हुए भारतेंदु लक्ष्मी–पूजा एवं गणेश–पूजा की भी चर्चा करते हैं।

''पूजि कै कालिहि सत्रु हतौ कोऊ
लख्मी पूजि महा धन पाओ।
सेई सरस्वति पंडित होउ
गनेसहि पूजिकै बिघ्न नसाओ।''[2]

इसी प्रकार गोवर्धन–पूजा का उल्लेख भी किया गया है :–

''जय जय गोवर्धन–धर देव।
जय जय देव राजमद–मर्दन करत सकल सुर सेव।''

दीपावली संपूर्ण भारत का महत्त्पूर्ण त्योहार है 'राग विहाग' के अंतर्गत भारतेंदु दीपावली का इस प्रकार वर्णन करते हैं :–

''आजु गिरिराज के उच्चतर शिखर पर,
परम शोभित भई दिव्य दीपावली।
मनहुं नगराज निज नाम नग सत्य किय,
बिबिध मनि–जटिल तन धारि हारावली।''[3]

कार्तिक मास में सांझ का गाने वाले पद का उल्लेख भी भारतेंदु करते हैं :–

''साँचहि दीपसिखा सी प्यारी।
धूमकेशन तन जगमगाति द्युति दीपति भई दिवारी।''[4]

इसी प्रकार भारतेंदु की 'कार्तिक–स्नान' कविता में संपूर्ण कार्तिक मास में होने वाले धार्मिक क्रिया–कलापों एवं त्यौहार का वर्णन है। 'बैशाख–महात्म्य' कविता में बैशाख माह के लोक–प्रचलित सभी व्रतों, अनुष्ठानों एवं धार्मिक संस्कारों का वर्णन हैः–

''मधु–रिपु के परसाद तों द्विज अनुग्रहहि जोय।
नित वैशाख नहान यह विघ्न–रहित मम होय।
माधव मेषग भानु मैं हे मधु–सत्रु मुरारि।
प्रान्त–न्हान फल दीजिए नाथ पाप निरुवारि।।''[5]

विवेच्य कविता के अंतर्गत भारतेंदु हिन्दी प्रदेश खासकर बिहार और उत्तर प्रदेश (चूँकि भारतेंदु बनारस की संस्कृति से अधिक परिचित थे) कि लोक–संस्कृति में व्याप्त लोकाचारों का चित्रण है। अथ अक्षय तृतीया, 'अथ री गंगा सप्तमी', 'अथ बैशाख शुद्ध द्वादशी', 'अथ नृसिंह चतुर्दशी', 'अथ पूर्णिमा' के अंतर्गत मास विशेष के सभी धार्मिक कार्यों का वर्णन है। बैशाख माह का अक्षय तृतीया दान–पुण्यादि कार्य के लिए माना जाता है। लोक में प्रचलित इस व्यवहार को भारतेंदु ने कविता में अभिव्यक्त किया है :–

''माधव शुक्ला तीज को श्री गंगाजल न्हाय।
सर्व पाप सों छूटिकैं विष्णु लोक सो जाय।
जब ही को होमादि करि हरि को जब हि चढ़ाई।
दान देई जब द्विजन कों पुनि आपहुं जब खाई
दान करै जल कुम्भ को रस अन्नादिक साथ।
चना और गोधूम को सत्तु देई द्विज–हाथ।
दधि ओदन आदिक सबै ग्रीष्म रितु के भोग।
देइ तीज दिन विप्र कों नासै भव–भय रोग।''[6]

इसी प्रकार नृसिंह चतुर्दशी के अंतर्गत भारतेंदु व्रत और उपवास का महत्व बताते हैं :–

''सब लोगन को व्रत उचित चौदस माधव मास।
पै वैष्णव जन तो कर निश्चय व्रत उपवास।
सांझ समैं हरि को करै पंचामृत असनान।
शीतल भोग लगावई करि आनंद बिधान।''[7]

इस कविता में विष्णु और लक्ष्मी पूजन के विधान के साथ–साथ गंगा स्नान पर भी जोर दिया गया है। अर्थात् लोक–प्रचलित सभी क्रिया–कलाप के प्रति कवि सचेत है। उदाहरण के लिए, इन पंक्तियों को देखा जा सकता है।

क. ''यह पढ़ि नदी नहाई के सांझ समै घर आई।
लक्ष्मी सहित नृसिंह की सुबरन मूर्ति बनाइ।
रात पूजि जागरण करि प्रात पूजि पुनि श्याम।
पीठक विप्रहि दै करै यह बिनती सुखधाम।''[8]

ख. नरहरि अच्युत जगतपति लक्ष्मीपति देवेस।
पूजौ पीठक–दान सों मन–कामना अशेस।
जे मन कुल में होयगे होय गए जे साथ।
या भव–सागर दुसह ते तिनहिं उधारौ नाथ।''[9]

ग. ''मास कातिक माघ की पूनो परम पुनीत।
तीन दिन गंगा न्हाइयै करि केशव सों प्रति।

एक मास जो नहिं बनै श्रीगंगा–असनान।
तौ पूनो दिन न्हाइयै अरु करियै जल–दान।''[10]

भारतेंदु की भक्तिपरक धार्मिक रचनाओं के दो पहलू हैं। पहले वर्ग में 'कार्तिक स्नान', 'बैशाख महात्म्य', 'देवी छद्म लीला', 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल', 'गीत गोविंदानंद', 'प्रातः स्मरण स्तोत्र' आदि कविताएँ हैं जिसके अंतर्गत भारतेंदु हिन्दी–प्रदेश में व्याप्त रीति–रिवाजों एवं विधि–विधानों का चित्रण करते हैं। चाहे वह माह विशेष हो अथवा त्योहार या दिन विशेष। एक तरह से इस प्रकार की रचनाएँ परंपरागत सांप्रदायिक रचनाएँ हैं। दूसरे वर्ग में उन रचनाओं को रखा जा सकता है जो शुद्ध भक्ति प्रेरित तथा दिव्य–प्रेम से संबद्ध रचनाएँ हैं। जैसे–'प्रेम मलिका', 'प्रेम सरोवर', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेमाश्रु वर्षण', इत्यादि। दिव्य–प्रेम संबंधी इन रचनाओं में भी किसी न किसी रूप में लोक–संस्कार व्याप्त है। 'प्रेम सरोवर' कविता की भूमिका में भारतेंदु लिखते हैं –

''अक्षय तृतीया है, देखो जल–दान की आज कैसी महिमा है। क्या तुम मुझे फिर भी जल–दान दोगे? .. .केवल इस अपने दीन को आश्वासन दे दे कि निराश न हो और इन अनिवार्य अश्रुओं को अपने अंचल से निवारण करो और भव–ताप से परम तापित इस दीन–हीन दुखी को अपने चरण–कल्पतरू की छाया में विश्राम दो, क्योंकि वैशाख में छायादान का बड़ा पुण्य हैं जो कहो कि वैशाख बड़ा पुण्य यमास है, इसमें तुमने क्या किया? तो देखो मैंने, यह कैसा उत्तम तीर्थ प्रेम–सरोवर बनाया है। जो इस तीर्थ में स्नान करेंगे, जो इस तीर्थ की विधि पूर्वक सेवा करेंगे, जो इस तीर्थ का ध्यान धरेंगे, वे आप पुण्य–स्वरूप पावन होकर अपने शरीर के वायु से तथा हवा से लोक को पवित्र करेंगे, क्योंकि सत्य प्रेम ऐसी ही वस्तु है।''[11]

'प्रेमाश्रु–वर्षण कविता लोकगीत के तर्ज पर आधारित है। जिसमें खमेटा, परज, चौखड़ा, राग मलार, चौताला, हिंडोला, के अंतर्गत लिखित गीतों को दखा जा सकता है। इसी प्रकार 'प्रेम मलिका' के अंतर्गत भारतेंदु ने राग सारंग, राग केदारा चौताल, राग बिहगरा, ठुमरी, रामकली राग सोरठ, राग विभास, राग देस, राग कान्हरा, राग असवारी, रागिनी अहीरी, राग हमीर, राग भैरव, आदि लोक–गीतों के विविध रूप देखे जा सकते हैं। इन गीतों के शब्दों तथा वाक्य–विन्यासों के चयन में भारतेंदु बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले ब्रजभाषा के शब्दों तथा क्षेत्रीयता का विशेष ध्यान रखते हैं।

इसप्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि भारतेंदु की भक्तिपरक कविताओं अथवा धार्मिक कविताओं में लोक–प्रचलित विधि–विधानों, रीति–रिवाजों तथा संस्कारों की अभिव्यक्ति है। इन भक्तिपरक कविताओं का लोक से जुड़ाव अकारण नहीं है। लोक का धर्म से गहरा संबंध होता है। भक्तिकाल में भी भक्तिपरक कविताएँ अत्यधिक मात्रा में लिखी गयीं और इन कविताओं का संबंध लोक–जागरण एवं लोक–जीवन से था।

भारतेंदु की भक्तिपरक कविताओं और भक्तिकाल की कविताओं में एक बुनियादी अंतर है। भक्तिकाल की कविता लोक–जीवन से संबंधित होते हुए भी अलौकिक अधिक थी। अर्थात् जीव, आत्म, परमात्मा, जगत संबंधी मान्यताओं पर अधिक जोर दिया गया है। जबकि भारतेंदु की भक्तिपरक कविताएँ मुख्य रूप से लोकप्रचलित रिवाजों, त्योहारों एवं अवसर विशेष पर आधारित है। वैष्णव धर्म के अत्यधिक प्रचलित होने का आधार यह है कि इसके विधि–विधान लोक–संस्कृति से जुड़े हुए हैं। राम बारह कला संपूर्ण अवतार थे, जबकि कृष्ण सोलह कला संपूर्ण बताए गए हैं। बिष्णु का कृष्ण के रूप में अवतार पूर्णावतार है। विष्णु का संबंध 'सात्त्त धर्म' या भगवत धर्म से है। इसके स्वरूपावतार राम और कृष्ण वैष्णव–धर्म के संस्कारों लोक आस्था के अधिक निकट हैं, तभी विष्णु और लोक में घर–घर में व्याप्त ईश्वर का वह रूप जो पहले मठों, पीठों एवं आश्रमों में प्रतिष्ठित होता था, वैष्णव–धर्म के सहारे वह घरों और आश्रमों में प्रवेश कर गया। भारतेंदु की भक्तिपरक कविताओं में वैष्णव–धर्म की प्रतिष्ठा लोक आकांक्षा की परिणति ही थी।

'होली', 'बसंतहोली', 'मधु–मुकुल' इत्यादि अवसर विशेष की कविताओं में इन त्योहारों के विधि–विधान एवं लोक में व्याप्त उल्लास का चित्रण है। होरी, ठुमरी, दादरा, धमार, धनाश्री, धमार सिंधुरा, धमार काफी, बिहाग धमार, असवारी आदि लोकप्रिय काव्य रूपों तथा अवसर विशेष पर गाये जाने वाले पद्य रूपों की रचना कर भारतेंदु ने इस काल में लोक–जीवन को एक गति प्रदान करते हैं। इस परिवर्तन को नोट करते हुए वसुधा डालमिया ने लिखा है "Thus the elite nature of the verse was changing even if the subject matter for the time being conformed to the old."[12] भारतेंदु ने लोकप्रिय आख्यानों एवं मिथकों का अपने ढंग से प्रयोग किया तथा इनमें मिथकों एवं रूपकों का यथासंभव राजनीतिक उपयोग भी किया। वसुधा ने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित होली पर उनकी दो कविताओं को इस संबंध में उद्धृत किया है। इसीप्रकार दिवाली पर लिखी कविताओं से वे यथार्थ का चित्रण करते हैं। वे प्रश्न पूछते हैं कि जब देश में धन ही नहीं है तो 'धनतेरस' कैसे हो सकता है। (भारतेंदु की यह शैली अपने विस्तृत रूप में अगली शताब्दी में गाँधी में पल्लवित होती दीख पड़ती है।) भारतेंदु की 'प्रबोधिनी' नामक कविता लोक–जागरण के उद्देश्य से लिखी गयी प्रतीत होती है। इसमें नायक के रूप में बालकृष्ण को लिया गया है जो भारत के बहुत बड़े हिस्से में जन के लोकप्रिय चरित्र हैं। इस कविता में बालकृष्ण को जगाने का प्रयत्न किया जा रहा है, जागरण की इस कविता में संपूर्ण ब्रजवासियों अथवा लोक–जीवन के दैनिक कार्यों के वर्णन के साथ–साथ धार्मिक कर्मकाण्ड एवं ऐतिहासिक पात्रों का भी उल्लेख है। उदाहरणार्थ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :–

क. ''जागो मंगल–रूप सकल ब्रज–जन रखवारे।
जागो नन्दानन्द करन जसुदा के बारे।
जागु बलदेवानुज रोहिनी मात–तुलारे।
जागो श्री राधा के प्रानन ते प्यारे।''[13]

ख. ''मथत दही ब्रज–नारि दुहत गौअन ब्रज–बासी।
उठि उठि के निज काज चलत सब घोष–निवारसी।''[14]

ग. ''जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव के मंदिर।
तहँ महजिद बनि गईं होत अब अल्ला अकबर।
जहँ झूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर।

तहँ अब रोवत सिवा चहुँ दिसि लखियत खंडहर।''[15]

घ. ''पृथ्वीराज जयचंद कलह करि जवन बुलायो।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो।
अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो।
विषय–बासना दुसह मुहम्मद फैलायो।
तब लौं सोए बहुत नाथ तुम जागे नहिं कोऊ जतन।
अब तो जागौ बलि बेर भइ हे मेरे भारत–रतन।''[16]

इस प्रकार 'प्रबोधिनी' कविता अत्यंत ही व्यापक कथ्य एवं संवेदना को समेटे हुए 'लोक जागरण' की कविता है।

समस्या पूर्ति जो उस समय एक प्रमुख साहित्यिक गतिविधि के रूप में प्रचलित थी, अपने मूल रूप में मौखिक परंपरा है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि ठेठ लोक परंपरा है। भारतेंदु ने इस मौखिक परंपरा का अपने ढंग से विकास किया। भारतेंदु की समस्यापूर्ति वाले काव्य अधिक उपयुक्त एवं सटीक हैं। उदाहरण के लिए 'समस्या–क्यों प्यारी फिरत दीवानी सी। की पूर्ति' की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :–

''छूट्यो केस खुली है अंचल पीक–छाप पहिचानी सी।
टूटी माल हार अरू पहुंची कुसुम–माल कुम्हिलानी सी।
नैन लाल अधरा रस चूसे सूरतिहू अलसानीसी।
जानी जानी नेकु लाजु क्यौं प्यारी फिरत दीवानी सी।''[17]

इसप्रकार भारतेंदु ने एक पूर्व प्रचलित मौखिक परंपरा को व्यवस्थित रूप दिया। रामविलास शर्मा ने लिखा है कि ''भारतेंदु ने बहुत–से कवित्त, सवैया समस्या–पूर्ति के लिए रचे हैं। लेकिन समस्या–पूर्ति करते हुए भी उनका कौशल देखते ही बनता है, उदाहरण के लिए, 'अंखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं – इस समस्या पर 'प्रेम माधुरी' में दिए हुए छंद। वास्तव में भारतेंदु हरिश्चन्द्र कवित्त, सवैया लिखने में देव, मतिराम और पद्माकर – जैसे कवियों से किसी तरह घटकर नहीं है। एक बात में वह बढ़कर है कि नायिकाभेद से आगे बढ़कर वह रोमांटिक रंग में लिखते हैं और इसलिए व्यर्थ के अनुप्रासों और शाब्दिक चमत्कार प्रदर्शन से अपने को दूर रखते हैं।''[18]

भारतेंदु की खड़ी बोली कविताओं के दो रूप हैं। एक तो परंपरागत गेय शैली के हैं जिनके अंतर्गत लावनी और पदावली जैसी रचनाएँ। दूसरे वे नवीन उद्भावनाओं की रचनाएँ हैं, जिसके अंतर्गत पारसी और हिन्दी के छंद हैं। प्रथम वर्ग की कविताएँ लोक–शैली में ही अभिव्यक्त हुए है। अर्थात् लावनी और पदावली का विकास लोकगीत से ही हुआ है। 'फूलों का गुच्छा', 'वर्षा–विनोद' आदि कविताओं की लावनियों को देखा जा सकता है। 'वर्षा–विनोद' कविता की लावनी में विरहणी स्त्री का मार्मिक चित्रण है –

''बीत चली सब रात न आए अब तक दिल–जानी।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी।
अंधेरी छाय रही भारी।
सूझत कहूं न पंथ सोच करै मन मन में नारी।
न कोई समझाबनवारी
चौंकि चौंकि के उझकि झरोखा झौंक रही प्यारी।
विरह से व्याकुल अकुलानी।''[19]

इसप्रकार भारतेंदु ने जहाँ लोकगीतों का लोककंठ से संग्रह एवं संकलन किया वहाँ इन्हें एक सुदृढ़ साहित्यिक आधार भी प्रदान किया। इस संदर्भ में विष्णुकांत शास्त्री ने लिखा है, ''भारतेंदु ने लोकगीतों के संकलन और प्रकाशन का उपयोग ही नहीं किया था, स्वयं भी लोकगीतों की शैली में कई गीतों की रचना की थी, जिनमें से कुछ खड़ीबोली में भी हैं। 'नजरहा छैला रे नजर लगाए चला जाय' और 'नशीली आँखों वाले सोए रहो, अभी है बड़ी रात' की जीवंतता भारतेंदु के चुलबुले प्रेमी हृदय को उजागर कर देती है। जिस तरह तुलसीदास के भक्त महाकवि की गरिमा को अपने लिए बंधन न बनाते हुए महिलाओं के लिए 'रामलालनहछू' की रचना में संकोच नहीं किया था, उसी तरह भारतेंदु ने भी महिलाओं के लिए विवाह–गीत रचे।''[20] भारतेंदु ने बारहमासा के परंपरागत लोक–शैली का भी प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। बारहमासा के अंतर्गत भारतेंदु गाँव की बधुओं की पीड़ा का चित्रण करते हैं।

''पिय गए बिदेस सँदेस नहिं पाय सखी मन–भावनी।
लाग्यो असाढ़ बियोग बरसा भई अरंभ सुहावनी।
अदरा लगी बदरा घुमड़ि रहे बिपति यह उनई नई।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई।''[21]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेंदु की कविताओं में लोक–रूपों तथा परंपराओं के साथ–साथ भारतीय संस्कृति अभिव्यक्त हुई है। भारतेंदु के पिता स्वयं एक कवि थे, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें साहित्य विरासत में मिला। उन्होंने सेवक, सरदार, द्विज, कवि मन्नालाल जैसे पूर्ववर्ती लोकप्रिय कवियों से प्रेरणा लेकर अपनी प्रतिभा का विकास किया। हजारीप्रसाद द्विवेदी भारतेंदु की काव्य–प्रतिभा पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि, ''उन्होंने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मंदाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीपन से निकालकर लोक–जीवन के आमने–सामने खड़ा कर दिया। ...उनका समूचा काव्य मूर्तिमान प्राणधारा का उच्छल वेग है। इस जीवन–धारा ने ही उनकी समस्त रचनाओं को उपादेय और नवयुग का मार्ग खोलने वाला बना दिया है। वे केवल बँधी रूढ़ियों के कायल नहीं थे। अपनी कविता की प्रेरणा उन्होंने नाना मूलों से प्राप्त की। उन्होंने संस्कृत जैसी पूर्ववर्ती भाषाओं के रस से रस खींचने में आनाकानी नहीं की और न बंगला, मराठी आदि पार्श्ववर्तिनी भाषाओं से ही प्रेरणा लेने में हिचक अनुभव किया।''[22]

भारतेंदु हरिश्चन्द्र की लोकप्रियता की आधारभूमि भक्तिकाल एवं रीतिकाल के कवियों, संतों और सूफी परंपरा के लोकगायकों द्वारा निर्मित की गयी थी। वैष्णव परंपरा में वैसे भी पद्य गायकी की परंपरा मंदिरों एवं घरों में पंद्रहवीं शताब्दी से ही विद्यमान थी। विभिन्न लोकाचारों उत्सवों, अनुष्ठानों के अवसर पर न केवल पेशेवर गायकों द्वारा बल्कि घरों के सदस्यों द्वारा गयी जाती थी। लीला–गान और रास–लीला की समृद्ध परंपरा समस्त पूर्वी भारत में, मथुरा से असम तक विद्यमान थी, जिसे भारतेंदु ने अपनी यात्रा–क्रम में भी देखा था, दूसरे, उन्होंने

यह अच्छी समझ लिया था कि जबतक साहित्य में लोकतत्त्व और लोकपत्र का उचित समावेश नहीं होगा तब तक वह लोक कंठ का विषय नहीं बनेगा। भक्तिकाल में मीरा, सूर, तुलसी और अन्य भक्त कवियों की रचनाएँ, रचे गए पदों की गेयता द्वारा जितनी लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थी, उससे प्रेरणा पाकर भारतेंदु ने अपनी पद रचनाओं को भी ताल, छंद, और सुरों में निबद्ध कर यथासंभव गेय बनाने का प्रयास किया। इसलिए पद–संरचना, लोक–गायकी, राग–रागिनी और ऋतुओं, उत्सवों तथा अनुष्ठनों के अनुरूप उनकी काव्यधारा प्रवाहित होती दिखती है। अपनी विविधता, संगीतिकता और गेयता के कारण न केवल उनके स्फूट गान में परिणत हो गए बल्कि उनके नाटकों में प्रयुक्त छंदोबद्ध पद्य–रचनाएँ इन गुणों से दीप्त हैं, जिनके प्रति लोक का स्वाभाविक अग्राह होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ लोग अपने नाम को अपने काम से सार्थक कर देते हैं। भारतेंदु एक ऐसा ही नाम है, जिन्होंने अपनी विराट दृष्टि से विपुल भारतीय साहित्य के मर्म का स्पर्श किया था। साथ ही उन्होंने उन अछूते क्षेत्रों और विधाओं पर अपना ध्यान केंद्रित किया जो किसी भी साहित्य को विश्व–साहित्य की श्रेणी में उपस्थित कर सकते थे, दृष्टि की इस सम्पन्नता के अनुरूप यदि उन्हें लम्बी आयु मिली होती तो निःसंदेह हमारे साहित्य का परिदृश्य कुछ और ही होता।

'जातीय–संगीत' निबंध में भारतेंदु ने ग्रामगीतों तथा लोकशैली को अत्यधिक महत्व दिया है। क़ज़री, ठुमरी, खमेटा, कंहरवा, चैती लावणी आदि ग्रामगीतों के प्रचार का संदेश भारतेंदु देते हैं। साथ ही भारतेंदु बाल्यविवाह, जन्मपत्री की विधि, अंगरेज़ी, फैशन, भ्रूणहत्या और शिशुहत्या, फूट और बैर, जन्मभूमि, 'आलस्य और संतोष' आदि के माध्यम से सामाजिक बुराइयों एवं समस्याओं को दूर करने की कोशिश करते हैं। भारतीय संस्कृति में व्याप्त कुरीतियों एवं संकीर्णता से संबंधित विषय पर गीत बनाकर जन–जीवन के बीच प्रसारित करने के लिए भारतेंदु प्रेरित करते हैं। भारतेंदु के अनुसार लोक–जागरण का सशक्त माध्यम संगीत है। वे लिखते हैं कि ''यद्यपि यह एक–एक विषय एक–एक नाटक, उपन्यास वा काव्य आदि के ग्रंथ बनाने के योग्य हैं और इन पर अलग ग्रंथ बनें तो बड़ी ही उत्तम बात है, पर यहाँ तो इन विषयों के छोटे–छोटे सरल देशभाषा में गीत और छंदों की आवश्यकता है जो पृथक पुस्तकाकार मुद्रित होकर साधारण जनों में फैलाए जायेंगे।''[23]

संगीत लोकजीवन का एक आधारभूत तत्त्व है। अतः भारतेंदु उस मूल तत्त्व पर विचार करते हुए उसका महत्त्व इंगित करते हैं। 'संगीत सार' निबंध में वे संगीत के शासत्र का निर्माण करते हैं। इसमें भारतेंदु गीत तथा संगीत के भेदों एवं उपभेदों का विस्तार से विवेचन करते हैं। भारतेंदु ने गीत के छः भेद – पद, तान, विरुद, ताल, पर, स्वर तथा संगीत के विविध अंगों स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कोक, हस्त के महत्त्व के प्रतिपादन के साथ–साथ कलागत जानकारी भी दी है। प्रस्तुत लेख के द्वारा भारतेंदु संगीत–कला के विकास के साथ–साथ लोकगीतों की शैली, क़ज़री, ठुमरी, भैरवी, बगरी, मधुमाधवी आदि को ज़िंदा रखना चाहते हैं। वर्तमान समय में संगीत के नष्ट होने की वेदना भारतेंदु के इस लेख से स्पष्ट होती है। वे लिखते हैं, ''अब देखिए कि संगीत की क्या दशा हो रही है? कितनी रागिनियों का गाना कौन कहै, किसी ने नाम भी नहीं सुना है। कितनी मतभेद से दो–दो, चार–चार रागों की रागिनी हैं, यह क्या? केवल अंध परंपरा। हम यह पूछते हैं कि प्रथम गाने में चार मत होने का क्या प्रयोजन है? एक भैरव राग सारा संसार एक स्वर–क्रम और रीति से गावैं, यदि कहीं मतों के भेद से चारों भैरव में भेद हैं तो उसमें एक को भैरव सिद्ध रक्खो बाकी क्या तो किसी दूसरे राग में आप ही मिल निकलेंगे यदि न मिले निकलै, उनका दूसरा नाम रक्खो। ऐसे ही हजारों बातें हैं, कोई बंधा हुआ नियम नहीं। जितने इस विद्या के जानने वाले हैं, अपने अभिमान में मत हैं। कोई ऐसा नियम नहीं कि जिसके अनुसार सब चलैं। यही कारण है कि रागों के पत्थर पिघलने इत्यादि प्रभाव लोप हो गए। हा! किसी काल में इस शास्त्र का ऐसा कठिन नियम था कि पुराणों में बराबर लिखा है कि ब्रह्मा ने अमुक गंधर्व को ताल से वा स्वर से चूकने से यह शाप दिया, शिवजी ने यह शाप दिया, इन्द्र ने यह शाप दिया, वही संगीत शासत्र अब है कि कोई नियम नहीं। शास्त्र असिल सब डूब गए। कुछ जैनों ने नाश किये, कुछ मुसलमानों ने। मुसलमानों में अकबर और मुहम्मदशाह को इसका ध्यान भी हुआ तो बड़े–बड़े गवैये मुसलमान बनाए गए, जिससे हिन्दुओं का जी और भी रहा–सहा टूट गया। चलिए सब विद्या मिट्टी में मिली।''[24]

रामविलास शर्मा ने लिखा है, ''भारतेंदु साहित्य के साथ और सब कलाओं की उन्नति भी चाहते थे। नाटकों और रंगमंच का सूत्रपात उन्होंने किया ही था। संगीत के उद्धार की भी उन्हें चिंता थी। उनके 'संगीत–सार' नाम के निबंध में उन्होंने गुरुमुख–श्रुति का भरोसा न करके उसे सुगम रीति से लिखने का सुझाव दिया है। बंगाल में संगीत की जो उन्नति हुई थी, उन्होंने उसका हवाला देकर अपने प्रदेश के संगीत–प्रेमियों को और भी प्रयत्न करने के लिए कहा है।''

निष्कर्ष

भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविताओं को आधुनिक काव्यधारा के आगमन की पूर्वपीठिका के रूप में अनेक कारणों को शृंखलाबद्ध किया जा सकता है। भारतेंदु से पूर्व रीतिकालीन साहित्य दरबारीपन एवं अभिजात्य के कारण एक ख़ास दायरे तक सीमित होकर संकीर्णता का शिकार हो गया था। भक्तिकाल के विशाल लोकजागरण का रीतिकाल में ह्रास ही हुआ। भारतेंदु ने साहित्य को रीतिकालीन जड़ता से मुक्त कर लोक–जीवन से जोड़ने तथा 'लोक' को अभिव्यक्त करने का महत्त्पूर्ण कार्य किया।रूप से परंपरागत काव्यगत प्रतिमानों एवं सृजेता के मर्यादित चिंतन के मुकाबले एक नये वैचारिक तथा शिल्पगत दबाव के रूप में आधुनिक काव्यधारा का आरंभ हुआ। आधुनिकता तथा नवीन ज्ञान–विज्ञान के आगमन के फलस्वरूप काव्य–रचना का क्षेत्र–विस्तार संभव हुआ। दरबारी संस्कृति में जकड़ी हुई कविता पांडित्य के प्रभाव एवं अभिजात्य से लदी हुई थी। अर्थात् कविता की स्वायत्तता नष्ट हो चुकी थी। नवजागरण के अग्रदूत

भारतेंदु ने कविता को रीतिकालीन संस्कारों से मुक्त कर लोकजीवन के निकट लाकर खड़ा कर दिया। कविता में 'लोक' की प्रतिष्ठा से पाठक–वर्ग परिचित हुआ तथा साहित्य में नवीन भावबोध परिलक्षित होने लगे।

पाद टिप्पणी

1. *शशि भारद्वाज (सं.), 'भाषा', केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, सितम्बर–अक्टूबर, 2004*
2. *भारतेंदु समग्र, पृ.23*
3. *भारतेंदु समग्र, पृ.24*
4. *भारतेंदु समग्र, पृ.25*
5. *भारतेंदु समग्र, पृ.26*
6. *भारतेंदु समग्र, पृ.26–27*
7. *भारतेंदु समग्र, पृ.27*
8. *भारतेंदु समग्र, पृ.28*
9. *भारतेंदु समग्र, पृ.28*
10. *भारतेंदु समग्र, पृ.28*
11. *भारतेंदु समग्र, पृ.29*
12. *Vasudha Dalmia, 'The Nationalization of Hindu Traditions, Bhartendu Harishchandra and Nineteenth Century Banaras', Oxford University Press, 1997, p.283*
13. *भारतेंदु समग्र पृ. 120*
14. *भारतेंदु समग्र पृ. 120*
15. *भारतेंदु समग्र पृ. 120*
16. *भारतेंदु समग्र पृ. 211*
17. *रामविलास शर्मा, 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं', राजकमल, 1953, पृ.157*
18. *भारतेंदु समग्र पृ. 275*
19. *भारतेंदु समग्र पृ. 149*
20. *शंभुनाथ, अशोक जोशी (सं.), 'भारतेंदु और भारतीय नवजागरण', आनेवाला कल प्रकाशन, प्र.संस्करण 1986, पृ.190*
21. *भारतेंदु–समग्र, पृ.155*
22. *हजारीप्रसाद द्विवेदी, :हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास'*
23. *भारतेंदु समग्र, पृ.1029*
24. *भारतेंदु समग्र, पृ.1091*

संदर्भ ग्रंथ सूची

हेमंत शर्मा (संपा.) भारतेंदु समग्र, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन, वाराणसी, 2000

शंभूनाथ एवं अशोक जोशी (संपा.) भारतेंदु और भारतीय नवजागरण, आनेवाला कल प्रकाशन, कोलकाता, 1986

बिपन चंद्र, भारत का राष्ट्रीय आंदोलन, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, 1998

ताराचंद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, (दूसरा खण्ड), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1969

बिपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2000

आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणीसभा, सं. 2050 वि.

ओकारनाथ श्रीवास्तव, हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष, राजकमल प्रकाशन, 1969

रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल, 1977

रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, किताबघर, 1999

रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास की परंपरा, राजकमल प्रकाशन, 1975

वीरेन्द्र कुमार शुक्ल, भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, प्रकाशक – रामनारायणलाल प्रयाग, 1995

शंभूनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1993